राजनीति विज्ञान

बी.ए.3 ईयर के छात्रों के लिए

द्वितीय प्रश्न पत्र : प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतक

"मनु"

चरैवेति चरैवेति

महात्मा ज्योतिबा फुले
रुहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

प्रस्तुतकर्ता -

डॉ. नरेश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर

राजनीति विज्ञान

राजकीय महाविद्यालय भोजपुर, मुरादाबाद

भूमिका

सनातन धर्म के अनुसार मनु संसार के प्रथम पुरुष थे। प्रथम मनु का नाम स्वयंभुव मनु था, जिनके संग प्रथम स्त्री थी शतरूपा। ये 'स्वयं भू' (अर्थात स्वयं उत्पन्न ; बिना माता-पिता के उत्पन्न) होने के कारण ही स्वयंभू कहलाये। इन्हीं प्रथम पुरुष और प्रथम स्त्री की सन्तानों से संसार के समस्त जनों की उत्पत्ति हुई। मनु की सन्तान होने के कारण वे मानव या मनुष्य कहलाए। स्वायंभुव मनु को आदि भी कहा जाता है। आदि का अर्थ होता है प्रारंभ।हिंदू धर्म में स्वायंभुव मनु के ही कुल में आगे चलकर स्वायंभुव सहित कुल मिलाकर क्रमश: १४ मनु हुए। महाभारत में ८ मनुओं का उल्लेख मिलता है व श्वेतवराह कल्प में १४ मनुओं का उल्लेख है। जैन ग्रन्थों में १४ कुलकरों का वर्णन मिलता है। अतः कहा जा सकता है कि मनु कोई एक व्यक्ति नहीं, बल्कि ऋषियों कि एक श्रंखला है।

मनु द्वारा रचित ग्रन्थ 'मनुस्मृति एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है । इसे 'मनुसंहिता', 'मानव धर्मशास्त्र' आदि नामों से भी जाना जाता है । मनु द्वारा रचित यह ग्रन्थ प्राचीन सामाजिक तथा राजनीतिक व्यवस्था का आधारभूत ग्रन्थ है । वेदों के पश्चात् भारत के उपलब्ध साहित्य में 'मनुस्मृति' का महत्त्वपूर्ण स्थान है । मनु के इस ग्रन्थ का रचना काल 300 ई.पू. से 200 ई.पू. तक माना जाता है । मनु के इस ग्रन्थ में तत्कालीन समाज, धर्म तथा राजनीतिक व्यवस्था का उल्लेख मिलता है। इसमें सदाचार, धर्मोपदेश तथा वर्णाश्रम पद्धति का विस्तृत विवरण दिया गया है।

तत्कालीन समाज पर 'मनुस्मृति' का काफी गहरा प्रभाव पड़ा। तत्कालीन समाज में वर्णाश्रम पद्धति का पालन मनु द्वारा प्रतिपादित नियमों के अनुसार किया गया । इस व्यवस्था के कारण किसी सीमा तक समाज में चारों वर्गों में सन्तुलन बना रहा। मनु का ग्रन्थ विश्व के मूलभूत तत्त्व धर्म को लेकर आगे बढ़ता है। व्यक्ति जो धारण करता है (धारणात् धर्मः), वही धर्म है । वस्तुतः मनु ने धर्म,समाज तथा राज्य में एकरूपता स्थापित करने के लिए अनेक सिद्धान्तों की रचना की।

मनु के राजनीतिक विचार

(1) राज्य की उत्पत्ति का दैवीय सिद्धान्त

मनु ने अपने राजनीतिक विचारों में न राज्य की उत्पत्ति के दैवीय सिद्धान्त का समर्थन किया है। उसके मतानुसार राज्य की उत्पत्ति समाज में सुशासन तथा व्यवस्था रखने के लिए हुई है। जिस समय कोई राजा नहीं था, उस समय चारों ओर भय और आतंक का साम्राज्य व्याप्त था। शक्तिशाली निर्बल लोगों के अधिकारों को हड़प लेते थे । कमजोर भयभीत एवं संत्रस्त थे । उनका कोई रक्षक नहीं था। समाज में कोई व्यवस्था और नियम नहीं था। इस अराजक व्यवस्था का अन्त करने के लिए और संसार की रक्षा के लिए भगवान् ने राजा की रचना की।

राजा की उत्पत्ति का उपर्युक्त प्रयोजन बताने के पश्चात् मनु ने भगवान् द्वारा राजा की उत्पत्ति के प्रकार और पद्धति का विस्तृत उल्लेख किया है । भगवान् ने इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर नामक आठ देवताओं के शाश्वत एवं सारभूत गुणों को मिलाकर राजा का सृजन किया। इन देवताओं के विशिष्ट तत्वों से निर्माण का अभिप्राय यह है कि उसमें शासन करने के लिए इन विशिष्ट देवताओं के गुण होने चाहिए। इसलिए मनु ने राजा के पद को परम पवित्र माना है।

इनका कहना है कि राजा चाहे बालक ही क्यों न हो उसका कभी अनादर नहीं करना चाहिए,क्योंकि वह मनुष्य के रूप में पृथ्वी तल पर एक महान् देवता के रूप में विचरण करता है। उसका अपमान करना देवता का अपमान करना है । मनु ने राजा को देवता बताते हुए धर्म और दण्ड को अत्यधिक महत्त्व दिया है।

(2) सप्तांग सिद्धांत

मनु ने राज्य को सप्तांग माना है अर्थात् राज्य एक सावयव है, जिसके 7 अंग हैं। 'मनुस्मृति के अनुसार स्वामी, मन्त्री राष्ट्र, कोष, दुर्ग, दण्ड और मित्र-ये राज्य के सात अंग हैं, जिनसे युक्त संगठन सप्तांग राज्य कहलाता है। मनु राज्य के इन सात अंगों में राजा अर्थात् स्वामी को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानता है।

(3) आदर्श राजा की विशेषताएँ

राजा का मुख्य कार्य प्रजा की रक्षा तथा कल्याण करना होता है । अतः इन कार्यों के भलीभाँति सम्पादन के लिए राजा में कुछ गुणों का होना आवश्यक है। राजा को विद्वान, जितेन्द्रिय, न्यायी, विनीत एवं लोकप्रिय होना चाहिए। उसे ऐसे विद्वानों से,जो तीनों वेदों के ज्ञाता हों, तीनों सनातन विद्याओं-दण्ड नीति, तर्क विद्या तथा ब्रह्म विद्या का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

मनु ने राजा के निरंकुश एवं मनमाने शासन पर कई प्रकार के अंकुश लगाए हैं। राजा यद्यपि आठ देवताओं के उत्कृष्ट अंगों से बना है और महान् देवता है,तथापि उस पर सबसे बड़ा अंकुश धर्म का है । उसका यह धर्म है कि वह शास्त्रों में बताए गए नियमों के अनुसार शासन करे। वह इन नियमों का निर्माता नहीं है और न ही इसमें किसी प्रकार का परिवर्तन कर सकता है। अतः राज्य में सर्वोपरि स्थान राजा का नहीं धर्म का है। वह राज्य में धर्म का पालन करने के लिए दण्ड का प्रयोग धर्मानुसार करने के लिए बाधित है । अतः 'मनुस्मृति में प्रतिपादित राजा दैवीय होते हुए भी निरंकुश अधिकारों का प्रयोग करने वाला नहीं है। .

(4) मन्त्रिपरिषद्

मनु का कथन है कि अकेला मनुष्य सुगम कार्य करने में भी समर्थ नहीं हो सकता, फिर राजा सहायता के बिना राज्य के महान कार्य को अकेले कैसे कर सकता है ? अतः राजा को शासन में सलाह एवं मन्त्रणा लेने के लिए मन्त्रियों की एक परिषद् बनानी चाहिए। मन्त्रियों की संख्या के सम्बन्ध में मनु का विचार है कि यह आवश्यकतानुसार निश्चित की जानी चाहिए। सामान्यतया सात या आठ व्यक्ति इस कार्य के लिए उपयुक्त होते हैं। मनु द्वारा मन्त्रियों की योग्यता पर बहुत बल दिया गया है। उसके अनुसार राजा को कुलीन,शास्त्र ज्ञाता,शूरवीर,शस्त्र चलाने में निपुण और प्रशिक्षित व्यक्तियों को ही मन्त्री पद पर नियुक्त करना चाहिए। विभागों के वितरण के सम्बन्ध में मनु का विचार है कि मन्त्रिपरिषद् का प्रत्येक सदस्य किसी-न-किसी विभाग का विशेष जानकार होता है, अतः उसे वही विभाग सौंपा जाना चाहिए।

(5) राज्य के कार्य

मनु के अनुसार आन्तरिक शान्ति स्थापित करना,बाहरी आक्रमण से देश की रक्षा करना और नागरिकों के पारस्परिक विवादों का निर्णय करना राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य हैं। इनके अतिरिक्त मूल्यों को नियन्त्रित करना; शिक्षा की व्यवस्था करना; ब्राह्मणों को दान देना, अपराधियों को दण्ड देना, वैश्यों और शूद्रों को कर्त्तव्यपालन हेतु मजबूर करना, अपंगों, स्त्रियों और अवयस्कों की रक्षा तथा सहायता करना आदि राजा के अन्य आवश्यक कार्य हैं।

(6) प्रशासनिक व्यवस्था

मनु ने आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था का भी वर्णन किया है । मनु के अनुसार प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए ग्रामों एवं नगरों आदि में विभक्त कर देना चाहिए। राजा को दो, तीन, चार और सौ गाँव के मध्य अपना राज्य स्थापित करना चाहिए। ग्राम प्रशासन की देखरेख हेतु एक ग्रामीण मन्त्री की नियुक्ति का भी वर्णन किया गया है। नगरों में न्याय,पुलिस एवं गुप्तचर व्यवस्था का भी प्रबन्ध किया गया है। राज्य कर्मचारियों के भ्रष्टाचार पर नियन्त्रण के लिए राजा द्वारा कठोर नियन्त्रण बनाए रखने की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

(7) कानून और न्याय व्यवस्था कानून

निर्माण के लिए एक परिषद की व्यवस्था के अतिरिक्त जनता अपनी संघीय संस्थाओं के द्वारा स्वयं अपने नियम बनाने के लिए स्वतन्त्र थी। कुल,जाति,श्रेणी इसी प्रकार की संस्थाएँ थीं। इन स्वायत्त संस्थाओं द्वारा निर्मित नियमों पर राजा अपनी स्वीकृति की छाप लगाता अथवा उनका पालन करता था। मनु ने विधायिका की रचना का विस्तृत रूप से उल्लेख किया है। उसके अनुसार विधायिका या परिषद् के सदस्यों की संख्या 10 होनी चाहिए, किन्तु रचना का आधार बौद्धिक रहे,न कि संख्या ।

'मनुस्मृति में न्याय व्यवस्था का भी वर्णन किया गया है। उसके अनुसार राजा स्वयं विवादों का निर्णय न करे। उस कार्य को देखने के लिए किसी विद्वान को

नियुक्त करना चाहिए। राजा के द्वारा नियुक्त ब्राह्मण भी ऐसे तीन व्यक्तियों के साथ मिलकर न्यायालय में विवाद का निर्णय करें।

(8) दण्ड

मनुष्य में दैवीय तथा आसुरी,दोनों प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं । दैवीय प्रवृत्तियाँ उसे शान्त,उत्तम तथा दूसरे के अधिकारों का ध्यान रखने वाली, दूसरों को सुख पहुँचाने की दिशा में कार्य करने के लिए प्रेरित करती हैं। आसुरी प्रवृत्तियाँ उसे अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए दूसरों का ध्यान न रखने के लिए तथा दूसरों के न्यायिक अधिकारों को हड़पने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। अतः ये समाज में उद्वेग, अशान्ति, असन्तोष और अव्यवस्था उत्पन्न करने वाली हैं। ये मनुष्यों में विकार उत्पन्न करती हैं और वह अपने धर्म धारण में प्रमाद करने लगता है। अतः मनु स्पष्ट रूप से कहते हैं कि मनुष्यों का आचरण शुद्ध बनाने के लिए उन्हें स्वधर्म मार्ग पर चलने को विवश करने के लिए दण्ड शक्ति की आवश्यकता है। इसलिए भगवान् ने दण्ड की सृष्टि और उसका प्रयोग करने के लिए राजा को बनाया है। मनु के मतानुसार दण्ड सब प्राणियों का रक्षक,ब्रह्म तेज से युक्त तथा धर्म का पुत्र है । उसका . सृजन ईश्वर ने किया है। दण्ड सम्पूर्ण प्रजा को अनुशासन में रखने वाला, उन्हें धर्म पालन के लिए बाध्य करने वाला,प्राणियों के सो जाने पर भी उनकी रक्षा करने वाला; देव,मानव, गन्धर्व,राक्षस, पशु-पक्षी, सर्प आदि सभी प्राणियों के लिए अनुकूल भोग करने वाला,सभी वस्तु तथा समाज में वर्णाश्रम धर्म की स्थापना करने वाला है । यदि समाज में दण्ड की व्यवस्था न रहे,तो लोग अधर्म के आचरण में संलग्न होकर अपना धर्म भूल जाते हैं तथा सब मर्यादाएँ नष्ट हो जाती हैं, किन्तु इस दण्ड का प्रयोग मनमाने ढंग से नहीं होना चाहिए । दोषी को दोष की मात्रा के अनुसार दण्ड देना चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा, तो समाज में असन्तोष और उद्वेग उत्पन्न होगा। समाज की शान्ति और सुरक्षा नष्ट हो जाएगी।

(9) धर्म

प्लेटो की भाँति मनु आदि भारतीय धर्मशास्त्रकारों का यह मत है कि राज्य एवं प्राणिमात्र के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि समाज में सब व्यक्ति अपने निर्धारित कर्तव्यों का पालन करें। इसी को धर्म का नाम दिया है। जब तक सब व्यक्ति अपने-अपने धर्म पालन में संलग्न रहते हैं,उसका उल्लंघन नहीं करते हैं, तब तक समाज में सुख और शान्ति बनी रहती है । सब मनुष्यों को अपने धर्म का पालन करते हुए अपने परम लक्ष्य, मोक्ष की प्राप्ति के लिए अग्रसर होना चाहिए। उनके धर्म और अर्थ का स्वरूप अत्यन्त विशाल एवं व्यापक है। मनु के अनुसार धर्म शब्द 'धारण करने का अर्थ देने वाली संस्कृत की 'धी' धातु से बना है। इसका अभिप्राय उन सब तत्त्वों, गुणों, नियमों और व्यवस्थाओं से है जिनके आधार पर यह समूचा जड़ और चेतन जगत् संचालित है और जिनके आधार पर टिका हुआ है। प्रत्येक वस्तु को विशिष्ट रूप प्रदान करने वाले गुण उसके धर्म हैं। यदि सब व्यक्ति अपने धर्मों के पालन की व्यवस्था करेंगे, तो समाज में सुव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी। अतः प्राणिमात्र का यह कर्त्तव्य है कि स्वधर्म पालन द्वारा समाज में सुव्यवस्था रखें।

(10) राजकीय कर एवं कोष

राजा को विकास के लिए धन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कोष ही राजा के विकास का आधार बन जाता है। मनु के अनुसार राज्य की सप्त प्रकृतियों में से एक कोष भी है। राजा कोष की वृद्धि के लिए जनता से अनेक प्रकार के कर लेता है। राजा को अधिक करों का बोझ जनता पर नहीं डालना चाहिए। अधिक करों से जनता का शोषण होता है तथा जनता असन्तुष्ट हो जाती है। मनु के अनुसार राजा को भूमिकर, नदी-नावों आदि पर कर लगाकर तथा व्यापारियों से करों के रूप में धन लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त बिक्री की वस्तुएँ जैसे-धान्य,स्वर्ण,मधु,घी,सुगन्धित पदार्थ,फल-फूल,खाल और मिट्टी के बर्तन आदि पर भी उचित रूप से कर लगाना चाहिए। मनु के अनुसार, "जो राजा मूर्खतावश अधीन प्रजाजन से अधिक कर वसूल करता है, वह स्वयं अपना और अपने बन्धु-बान्धवों का ही नाश करता है।"

(11) परराष्ट्र सम्बन्ध

मनु ने परराष्ट्र सम्बन्ध पर विचार करते हुए दो सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। ये हैं-मण्डल सिद्धान्त और षाड्गुण्य नीति।

(i) मण्डल सिद्धान्त

मनु के अनुसार राजा को महत्त्वाकांक्षी होना चाहिए तथा क्षेत्र विस्तार के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहना चाहिए। इस दृष्टि से राजा को मण्डल सिद्धान्त के आधार पर दूसरे राज्यों के साथ सम्बन्ध स्थापित करने चाहिए। मण्डल सिद्धान्त से अभिप्राय है राजा का प्रभाव क्षेत्र' । इसका केन्द्र-बिन्दु विजिगीषु. राजा' (विजय प्राप्ति की इच्छा रखने वाला राजा) होता है। मण्डल सिद्धान्त के अन्तर्गत 12 राज्यों का एक मण्डल सम्बद्ध होता है, जिनसे राज्य को विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध बनाने चाहिए।

(ii) षाड्गुण्य नीति

विजिगीषु राजा को चाहिए कि वह शत्रु राजाओं से अलग-अलग या मिलकर साम, दाम, दण्ड और भेद आदि उपायों के पुरुषार्थ और नीति से उन सबको वश में करे । मनु के अनुसार, "राजा साम,दाम, दण्ड और भेद की नीति का एक-एक करके या सम्मिलित रूप से प्रयोग करके अन्य राज्यों को जीतने का प्रयत्न करे, युद्ध द्वारा नहीं,क्योंकि युद्ध से दोनों पक्षों का ही नाश हो जाता है।" इस सम्बन्ध में राजा के द्वारा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीभाव और संश्रय इन 6 लक्षणों के प्रयोग को ही षाडगुण्य नीति' कहते हैं।

इन सबके अतिरिक्त राजा को दूसरे राज्यों से कूटनीतिक सम्बन्ध रखने चाहिए तथा राजदूतों का आदान-प्रदान करना चाहिए। पराजित राजा के साथ भी सहृदयता का व्यवहार करना चाहिए।

मनु का महत्त्व एवं योगदान

मनु पहले विचारक थे, जिन्होंने अराजकता का अन्त करके एक सुव्यवस्थित शासन की स्थापना पर बल दिया । उन्होंने दैवीय सिद्धान्त का प्रतिपादन करके राजतन्त्र को जन्म दिया, परन्तु कभी-कभी उनके राजतन्त्र को निरंकुश समझ लिया जाता है। मनु ने राजा पर धर्म एवं रीति-रिवाज का बन्धन लगाया है. इसके साथ-साथ यह भी कहा है कि राजा जनता के प्रति अपने दैवीय उत्तरदायित्व को समझे एवं धर्मानुकूल आचरण करे। मनु प्रथम विचारक थे जिन्होंने विधि, दण्ड एवं न्याय के सिद्धान्तों को संहिताबद्ध किया। 'मनुस्मृति' इस सम्बन्ध में आज भी हमारा पथ-प्रदर्शन करती है। वर्तमान समय में भी उसके नियमों एवं दिशा-निर्देशों को अनदेखा नहीं किया जा सकता।

मनु ने मण्डल सिद्धान्त एवं षाड्गुण्य नीति के द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय शक्ति सन्तुलन का सिद्धान्त प्रस्तुत किया। उन्होंने राष्ट्रवादिता एवं अन्तर्राष्ट्रीयता के मध्य एक सुन्दर समन्वय स्थापित करके वर्तमान समय के तनावशील विश्व में एक आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनका चिन्तन स्वप्नलोकीय आदर्शवाद न होकर व्यापक मानवीय धर्म पर आधारित व्यावहारिक नैतिकवादी चिन्तन है। उन्होंने मनुष्यों के कर्तव्यों एवं स्वधर्म पालन के उद्देश्य पर बल दिया। उन्होंने ही प्रथम बार सम्प्रभुता, राजधर्म और राष्ट्रीयता जैसे प्रश्नों का विधिवत् विवेचन किया। उनके राजकोष एवं अर्थव्यवस्था सम्बन्धी विचार वर्तमान समय में भी प्रासंगिक हैं। उनके उपर्युक्त विचारों के कारण ही उन्हें भारतीय शासन व्यवस्था का जनक माना जाता है।